Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

वर्तमान विधिक शिक्षा एवं विधिक व्यवस्था एक मूल्यांकन

डॉ. ज़ाकिर खान*

* प्राचार्य, सांदीपनि विधि महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना – भारत के संदर्भ में विधिक शिक्षा से आशय अपना विधिक व्यवसाय प्रारंभ करने से पूर्व छात्रो को दी जाने वाली शिक्षा से है। भारत में विधि की शिक्षा परम्परागत विश्वविद्यालयों के साथ-साथ केवल विधिक शिक्षा हेतु स्थापित कुछ विश्वविद्यालयों द्वारा भी दी जाती हैं। सभी को स्पष्ट रूप से यह ज्ञात है कि भारतीय विधिक व्यवस्था में विधि की अज्ञानता या अनभिज्ञता को कानूनी बचाव के रूप में मान्यता दी जाती हैं। इसका तात्पर्य यह हैं कि यदि कोई भी व्यक्ति अज्ञानतावश किसी भी कानून का उल्लघंन कर देता हैं तो न्यायालय इस आधार पर कि उल्लघंनकर्ता को उस कानून की जानकारी नही थी कोई रियायत या लाभ नही दे सकता हैं।

अपनी दैनिक चर्चा में हम ऐसे कई कार्य करते हैं जिनके बार में कानून क्या कहता है- इसकी हमें इसकी जानकारी नही होती है। विधिक ज्ञान इतना महत्वपूर्ण होते हुये भी हमारी शिक्षा प्रणाली में कानूनी शिक्षा अपना वांछित स्थान नही प्राप्त कर पाई। एक तरफ तो सामान्य नागरिको को विधिक शिक्षा नही दी जाती हैं और दूसरी तरफ विधिक अज्ञानता के लिये दण्डित किया जाना अभी तक की सरकारो की बड़ी विफलता हैं वर्तमान में विधिक शिक्षा से तात्पर्य भविष्य में विधि को अपनी आय का साधन बनाने वालो को दी जाने वाली विधिक शिक्षा तक ही सीमित हैं जैसे वकील, जज, विधिक परामर्ष दाता, प्राध्यापक इत्यादि। वर्तमान परिदृष्य में बढ़ते इंटरनेट के उपयोग एवं अंतराष्ट्रीय व्यापार-व्यवसाय को दृष्टिगत रखते हुए विधिक शिक्षा व्यवस्था में वृद्धि कर न्यूनतम विधिक शिक्षा का निर्धारण कर प्रत्येक देशवासी को इसे प्रदान करने की आवश्यकता हैं।

विधिक शिक्षा के दो आयाम हैं- प्रथम, विधिक क्षेत्रो में जाने वालो को दी जाने वाली शिक्षा तथा दूसरी शेष सामान्य देशवासियों को दी जाने वाली शिक्षा। कानूनविदो को दी जाने वाली शिक्षा जो कि वर्तमान में एलएल.बी. तथा एलएल.एम. पाठ्यक्रमों के माध्यम से ही दी जाती हैं। एक अत्यंत विशेषीकृत शिक्षा है जो कि कानूनविदो/विधि विशेषज्ञो के लिये वांछित भी हैं, क्योंकि वर्तमान समय में न्याय प्रणाली का भार इन्हीं विधिज्ञो के कंधो पर हैं। यद्धपि यह शिक्षा भी समय काल एवं परिस्थिति के साथ कदम से कदम मिलाकर नही चल पायी हैं। हमारा विधिक पाठ्यक्रम अभी भी अंग्रेजी शासन काल की औपनिवेशिक मानसिकता से बाहर नही आ पाया हैं। उदाहरणार्थ एलएल.बी. पाठ्यक्रम में एक विषय भारत का विधिक इतिहास पढ़ाया जाता हैं जिसमें भारत में विधि अथवा कानून का विकास किस तरह हुआ इसका उल्लेख हैं किन्तु यह दुर्भाग्यपूर्ण एवं हास्यापद हैं कि आजाद भारत में विधि के छात्रो को भारत के विधिक इतिहास की शुरूआत सन् 1600 में होना पढ़ाया जा रहा हैं, जिस वर्ष ब्रिटिश शासन ने 'ईस्ट इण्डिया कंपनी' के निर्गमन का चार्टर जारी किया गया जबकि वास्तविकता यह है कि भारतीय विधिक इतिहास का प्रारंभ 5000 वर्षो से अधिक पुराने मनुस्मृति काल या उससे भी अधिक प्राचीन रहा है या इसे कोटिल्य के अर्थशास्त्र/नीतिशास्त्र से तो प्रारंभ माना ही जाना चाहिए। यदि उक्त दोनो महत्वपूर्ण प्राचीन पुस्तको के पूर्व हम न भी जावे तो भी ये दोनों ही पुस्तके विधिक संहिता के रूप में इतनी प्राचीन हैं, कि जिस काल में भारत में राजओं के भी राजा अर्थात् सम्राट हुआ करते थें, उस काल में संभवत: पश्चिमी विश्व जो कबिलो में निवास करता था को सभ्य कहना भी कुछ मुश्किल होगा।

इसी तरह पिछले 10 वर्षो में विधि के क्षेत्र में बहुआयामी विकास हुआ जैसे इंटरनेट के आने से ऑनलाईन अपराधियों का बढ़ना तथा देश-विदेश में सुगमता से लेन-देन तथा अन्य गतिविधियों के संचालन में सुविधा का हो जाना। उदाहरणार्थ भारत में क्रिप्टा करेंसी का व्यापार वैधानिक नही हैं परन्तु कई मोबाईल एप्लीकेशन के माध्यम से इस व्यापार के मामले आ रहे हैं जिसके लिये फिलहाल कोई सुनियोजित कानून हमारे सामने नही हैं। बहुत सारे ऐसे नये विषय समाविष्ट हुये हैं, जिनका वर्तमान औपचारिक विधिक शिक्षा में उचित समायोजन नही हो पाया हैं जैसे अन्तराष्ट्रीय मध्यस्थता, विदेश व्यापार, बैकिंग कानून, बौद्धिक सम्पदा आदि। इसके अतिरिक्त हमें विशेष रूप से न्यायाधीषो एवं अधिवक्ताओं में न्यायिक गुणो या ज्यूडिशियल वर्च्यूज के विकास की और ध्यान देना होगा जिससे कि न्याय प्रणाली व्यक्तिगत एवं मानवीय गुण दोषो से यथा संभव मुक्त रहे तथा व्यक्तिगत मान्यताएँ एवं व्यक्तिगत अंहकार न्यायिक अधिकारी की दृष्टि को बाधित न कर सकें।

विधिक शिक्षा का प्रथम और महत्वपूर्ण उद्देश्य देश में अच्छे नागरिको का निर्माण करना हैं ऐसे नागरिक जो न सिर्फ देश में स्थापित विधि के शासन को समझे बल्कि उसको सुदृढ़ करने में सकारात्मक योगदान भी दे सकें, परन्तु इसके लिये विधि एवं विधिक व्यवस्था जानना, समझना एवं उसके प्रति समर्पित होना आवश्यक हैं।

विधिक शिक्षा का दूसरा उद्देश्य प्रत्येक नागरिक को उसके अधिकारो और कर्तव्यों का ज्ञान कराना हैं तथा उनका पालन और निर्वहन कैसे विधि के द्वारा कराया जाना हैं यह बतलाना भी हैं अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूकता एवं सजगता सरकारी तंत्रो की निरंकुशता पर प्रभावी अंकुश लगा सकती हैं।

विधिक शिक्षा को विभिन्न विषयों से पूर्णत: पृथक कर नही देखा जा सकता हैं बल्कि यह तो हर विषय में समाहित भी हैं एवं उनका एक अभिन्न अंग हैं जैसे मोरल साइंस के विषय में हमारे चारो तरफ के पशु-पक्षी, पौधे इत्यादि के भी जीवन के अधिकार को पहचाना एवं उनका सम्मान करना, भाषा विज्ञान के छात्रो की बौद्धिक सम्पदा तथा कॉपीराईट इत्यादि की समझ विकसित करना, समाजशास्त्र में सामाजिक समरसता, धर्मनिरपेक्षता, सामाजिक न्याय के वैधानिक विकास के समझ को विकसित करना आवश्यक हैं। बच्चो को सही गलत, न्याय-अन्याय, अधिकार कर्तव्य, भारतीय संविधान के सिद्धांत इत्यादि के विषय में समझ एवं जागरूकता, उनको भविष्य के जिम्मेदार नागरिक बनाने में एक महत्वपूर्ण संगठक सिद्ध होगें अत: आवश्यक हैं कि देश के विधि शिक्षा के दोनों आयामो में इस प्रकार आमूलचूल परिवर्तन किया जायें, जिससे कि एक तरफ अच्छे नागरिको का निर्माण कर राष्ट्र निर्माण हो सकें और दूसरी तरफ निष्पक्ष न्यायिक गुणो से समृद्ध न्यायिक अधिकारियों के द्वारा परिचालित न्याय व्यवस्था कायम हो सकें।

हमारा देश अतीत से ही न्यायप्रिय रहा है। नीति, न्याय, धर्म आदि हमेशा से ही आदर्श रहे है। अनीति, अन्याय और अधर्म में उसकी कभी आस्था नही रही। अन्याय का उसने सदैव विरोध किया है। असहाय और निर्धन व्यक्तियों को कुचलने की उसकी कभी नियति नही रही है। निर्धन व्यक्तियों के विरुद्ध वाद दायर करना अथवा मुकदमा चलाना तभी न्यायपूर्ण कहा जा सकता है जब उन्हें अपनी प्रतिष्ठा को बचाने का समान अवसर मिले। भारतीय न्याय व्यवस्था का उद्देश्य कभी एक तरफा न्याय करने का नही रहा है। यदि कोई पक्षकार निर्धन या गरीब है तो हमने उसे सुविधा मुहैया की व्यवस्था की है। किसी भी व्यवस्था में जनता की अपेक्षा रहती हैं कि उसे न्याय सहज एवं सुगम रूप से उपलब्ध हो। न्यायालय तक पहुँचने की प्रक्रिया, अत्यन्त सरल एवं विधि की जटिलताओं एवं पेंचीदगियों से रहित होना चाहिए। इसके साथ-साथ सभी व्यक्तियों को न्याय प्रभावी रूप से उपलब्ध हो पाये एवं न्याय के समान अवसर मिल सकें, इस उद्देष्य को ध्यान में रखते हुए न्याय प्रशासन की व्यवस्थायें अधिक खर्चीली एवं मंहगी नही होनी चाहिए। विधिवेता सिसरो ने सही कहा हैं-

'बुद्धिमान विवेक से, साधारण मनुष्य अनुभव से,
अज्ञानी आवश्यकता से और पशु स्वभाव से सीखते हैं।'

आज न्यायालयों में विशाल संख्या में अनेक प्रकार के वाद काफी लंबे समय से लंबित पड़े हैं, हमारे पास ऐसा कोई विकल्प नही हे कि शीघ्र एवं प्रभावी रूप से जनता को न्याय उपलब्ध हो पाये। कहने के लिए तो जनता को अनेक मूल अधिकार एवं अन्य विधिक अधिकार दिये गये हैं, लैकिन वास्तविकता यह हैं कि हमारी अधिकांश जनसंख्या गरीब, असहाय, निरक्षर होने के कारण अपने अधिकारो का प्रवर्तन करवाने में असमर्थ रहती हैं, उसका प्रमुख कारण हमारी जटिलता से पूर्ण एवं महंगी न्यायिक व्यवस्था हैं। अत: आज यह आवश्यक हो जाता है कि न्याय-प्रशासन में न केवल न्यायिक पदाधिकारीगण ही अपने दायित्व का उचित निर्वहन करें, अपितु अन्य समस्त प्राधिकारीगण एवं समाज के सभी वर्ग मिलकर गरीब व असहाय व्यक्तियों को न्याय दिलवाने में अपना भरपूर सहयोग प्रदान करें। वर्तमान न्याय व्यवस्था में इसके कई रूप है -

विधिक सहायता : निर्धन व्यक्तियों को न्याय सुलभ कराने के लिए हमारी न्याय व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण योजना के रूप में हैं विधिक सहायता। यदि कोई व्यक्ति निर्धन है और निर्धनता के कारण न्यायालय जाने में असमर्थ है तो ऐसे व्यक्तियों के लिए राज्य सरकार द्वारा अकिंचन को राज्य के व्यय पर विधिक सहायता उपलब्ध कराने का प्रावधान किया है।

दी न्यू एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका ने विधिक सहायता का अर्थ किसी जरूरतंद व्यक्ति को व्यवसायिक विधिक मदद देना, चाहे वह मुफ्त दी जाये अथवा कुछ राशि लेकर दी जाने से हैं।

इन्टरनेशनल कमीशन ऑफ जूरिस्ट ने अपने प्रतिवेदन में कहा कि विधिक सहायता में न्यायालयों को दी जाने वाली ऐसी विधिक सलाह एवं प्रतिनिधित्व के प्रावधान उन सभी के लिए सम्मिलित हैं, जिन्हें अपने जीवन, स्वाधीनता, सम्पत्ति या मान-मर्यादा को खतरा हैं एवं जो इस हेतु सलाह प्राप्ती या अपने हितार्थ प्रतिनिधि कि नियुक्ति पर होने वाले ठ को वहन करने में असमर्थ हैं।

दी यूरोपियन कन्वेन्शन ऑफ ह्यूमन राईट्स अनुच्छेद 6 (3) (स) के अनुसार प्रत्येक व्यक्तिय जो को आपराधिक मामले में अभियुक्त हैं वह स्वयं के बचाव हेतु विधिक सहायता प्राप्त कर सकता हैं। हुसैन आरा खातुन विरूद्ध बिहार राज्य AIR 1979 SC 1360 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि यह बन्दी के प्रति युक्तियुक्त, ऋजु और न्यायोचित प्रक्रिया का अंग हैं, जो कि न्यायालय की प्रक्रिया के माध्यम से परिमोचन का प्रयास कर रहा है कि उसे विधिक सेवायें उपलब्ध करायी जाये। इस हेतु न्यायालय ने 39 (क) का भी सहारा लिया जिसमें नि:षुल्क विधिक सहायता के लिये उपबन्ध किया गया है कि इस मामले में न्यायालय ने उन बन्दियों में छोड़ने का आदेश दिया जिनको उस अवधि से लम्बी अवधि तक जेल में रखा गया था, जिसके लिये उन्हें सिद्धदोष ठहराये जाने पर अधिकतम सजा दी जा सकती थी।

सुनील बत्रा विरूद्ध दिल्ली प्रशासन[1] के मामले में जस्टिस अय्यर ने कहा कि केदी के अधिकार न्यायालय द्वारा याचिका एवं न्यायालय की अवमानना द्वारा संरक्षित किये जायेगे इस क्षेत्र अधिकार को व्यावहारिक बनाने के लिये केदियों के लिये नि:शुल्क विधिक सेवायें प्रोग्रामो को न्यायालयो द्वारा मान्यताप्रद व्यवसायिक संगठनो जैसे नि:षुल्क विधिक सहायता समिति द्वारा प्रोत्साहित किया जायेगा।

एम.एच. हासकाट विरूद्ध स्टेट ऑफ महाराष्ट्र[2] के वाद में न्यायाधीष कृष्ण अय्यर ने यह उचित ही संप्रेषण किया था कि नि:शुल्क विधिक सहायता प्रदान किया जाना राज्य का कर्तव्य और सरकार का एक आवश्यक कार्य हैं।

इसके लिए निम्नलिखित विधियाँ एवं संविधान में व्यवस्था की गई हैं-

1. संविधान के अनुच्छेद 39 क में
2. संविधान के अनुच्छेद 32 एवं 226 में
3. दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 303 एवं धारा 304 में
4. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 2 नियम 10 क, आदेश 33 एवं आदेश 44 में।

विधिक साक्षरता: विधि का ज्ञान सभी के लिए आवश्यक है। यदि किसी व्यक्ति के विधिक अधिकारों का उल्लंघन होता है तो वह अपने अधिकारों के संरक्षण/प्रवर्तन हेतु न्यायालय में तभी दस्तक दे सकता है, जब उसे अपने अधिकारों की जानकारी होगी। विधि की यह धारणा हैं कि कोई भी व्यक्ति यह बहाना नही बना सकता या बचाव प्रस्तुत नही कर सकता है कि उसे विधि की जानकारी नही हैं अर्थात् विधि अनभिज्ञता क्षम्य नही है। भारत वर्ष

में कानूनो का जाल बिछा हुआ हैं और सामान्य व्यक्तियों के लिये यह संभव ही नही हैं कि वह सभी कानूनो की जानकारी रख सके। स्वच्छ सामाज के लिये नागरिको को सामाजिक व्यवस्था के प्रति उत्तरदायी होना आवश्यक हैं। राज्य के विधिक सेवा प्राधिकरण ने विधिक साक्षरता एवं विधिक चेतना का कार्यक्रम अपने हाथ में लिया हैं। आज प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था में न केवल बिखराव आ रहा हैं, वरन जाति व्यवस्था के कारण समाज में तनाव व कटुता बढ़ रही हैं समाज में शोषण व अत्याचार बढ़ रहे हैं।

भारतीय संविधान ने पति व पत्नी को समान अधिकार दिये हैं। भारतीय दण्ड संहिता की धारा 304 (ए), 498 (ए) व दहेज विरोधी अधिनियम की धारा 4 ने नारी के सम्मान एवं स्वतंत्र अस्तित्व के लिए ढाल का काम किया है। महिला को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 एवं हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 24 व 25 के अंतर्गत निर्वाह भत्ता प्राप्त करने का अधिकार हैं एवं साथ ही महिला को पिता/पति अथवा पुस्तैनी जायदाद में भाई व पुत्रो के समान ही सम्पत्ति में उत्तराधिकार का हक प्राप्त हैं। अब संविधान में उसे पूर्ण स्वामित्व का दर्जा उपलब्ध कराया है। जिसका परिणाम यह हैं, कि अब नारी की अबला वाली स्थिति नही रही हैं।

विधिक साक्षरता कार्यक्रम के क्रियान्वयन में न्यायिक अधिकारीगण के अलावा अधिवक्तागण, सामाजिक कार्यकर्ता, शिक्षाविद एवं विधि छात्रो का पूरा सहयोग मिलता हैं। विधिक साक्षरता एक राष्ट्रीय कार्यक्रम हैं इसने लोगो में एक नई चेतना का संचार किया हैं।

1. साक्षरता शिविर
2. साहित्य प्रकाशन
3. पैरा-लीगल क्लिनिक
4. पैरा-लीगल सर्विसेज

लोकहित वाद : निर्धन व्यक्तियों को न्याय सुलभ कराने की दिशा में एक महत्तवपूर्ण पहल लोकहित वाद की है। यह व्यवस्था ऐसे व्यक्तियों के लिए है जो गरीबी अथवा कानून की अज्ञानता के कारण न्यायालय जाने में असमर्थ होते है। ऐसे व्यक्तियों की और से किसी भी अन्य व्यक्ति द्वारा अथवा संगठन द्वारा वाद दायर किया जा सकता है। यही लोकहितवाद की अवधारणा है। लोकहितवाद का उद्देश्य व्यक्तियों, शोषित वर्गो व अलाभप्रद व्यक्तियों के सांविधानिक व विधिक अधिकारो व लोकहित का संरक्षण हैं, व उन्हें सामाजिक व आर्थिक न्याय प्रदान करना हैं। लोकहित वादों के लिए यह आवश्यक है कि -

1. वह जनसाधारण के व्यापक हितों से जुड़ा हो,
2. निजी हित न हो,
3. सद्भावनापूर्ण हो,
4. राजनीति से प्रेरित न हो।

बधुआ मुक्ति मोर्चा विरूद्ध भारत संघ[3] के मामले में माननीय न्यायाधीष पी.एन. भगवती ने कहा-लोकहित मुकदमा प्रतिकूल प्रकृति का मुकदमा नही हैं वरन यह सरकार व उसके अधिकारियों को चुनौती का अवसर देता है कि वे मानवीय अधिकारो को समुदाय के वंचित व वेदना सहन करने वाले व्यक्तियों के लिए सार्थक बनाये एवं उन्हें सामाजिक व आर्थिक न्याय सुनिष्चित करे, जो संविधान की निहित भावना हैं।

एस.पी.गुप्ता व अन्य विरूद्ध भारतसंघ व अन्य[4] के वाद में उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधिपति पी.एन.भगवती ने कहा कि जो व्यक्ति लोकहित मुकदमा लेकर न्यायालय में आते है, उन्हें सद्भावनापूवर्क न्याय की रक्षा करने हेतु कार्य करना चाहिए यदि वे व्यक्तिगत लाभ या निजी उपलब्धि या राजनैतिक आशय या अन्य कुटिल विचार से कार्य करते है तो न्यायालय को इस तरह के व्यक्तियों की पहल पर सक्रिय नही होना चाहिए एवं उनके आवेदन को प्रारम्भ में ही निरस्त कर देना चाहिए।

विधिक सेवा प्राधिकरण : संसद ने राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987 एवं इसका संशोधन अधिनियम 1994 इस उद्देश्य से पारित किया हैं, कि दूर दराज में रहने वाले गरीब एवं असहाय व्यक्तियों को न्याय प्राप्त करने की सुविधा उपलब्ध हो सकें। लोक अदालत एवं विधिक सहायता शिविरो के माध्यम से समाज के संभ्रान्त लोगों को जोड़कर न्याय उपलब्ध करवाने का प्रयत्न किया जाता हैं। यह अधिनियम प्राधिकरणो पर यह दायित्व डालता हैं कि वे विधिक सेवायें अनुसूचित जाति एवं जनजाति, मानव बेगार, अन्य रूप से असमर्थ व्यक्तियों या अन्य परिस्थितिजन्य व्यक्तियों जैसे जाति अस्पर्शयता, जाति संबंधी हिंसा, बाढ़, सुखा, तुफान अथवा औद्योगिक विपत्तियों से ग्रस्त, औद्योगिक कर्मचारियों का शोषण, पुलिस की सुरक्षा में अपराधी या ऐसे व्यक्ति जिनकी वार्षिक आय कम हैं अर्थात् जो अकिंचन हैं, जिनका मामला उच्चतम न्यायालय में या उच्चतम न्यायालय से भिन्न किसी अन्य न्यायालय में विचाराधीन हैं, ऐसे व्यक्ति उक्त योजना का लाभ प्राप्त करने के अधिकारी हैं।

इसी प्रकार राज्य स्तर पर राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण, जिला स्तर पर जिला विधिक सेवा प्राधिकरण तथा तहसील स्तर पर तहसील विधिक सेवा प्राधिकरण अपने कार्य का संचालन सुचारू रूप से कर रहे हैं।

लोक अदालत : 'न्याय सस्ता, सुलभ एवं त्वरित हो' लोक अदालत की अवधारणा इसी आधार सूत्र की उपज है। आज जगह-जगह लोक अदालतें आयोजित होने लगी है। न्यायालयों के अलावा विभिन्न प्रकार के मामलों को निपटाने के लिए लोक अदालत आयोजित होने लगी है। इस प्रकार लोक अदालत सस्ते, सुलभ एवं त्वरित न्याय का एक सशक्त मंच/माध्यम है। हमारे देश में यह व्यवस्था कोई नयी नही है। प्राचीन पंच परमेश्वर रूपी न्याय व्यवस्था का ही यह एक रूप है। गाँवों में आज भी 'चौपाल पर न्याय' की व्यवस्था प्रचलित है। लोक अदालतों की मुख्य विशेषताएँ हैं-

1. इनमें मामलों का निपटारा पक्षकारों में आपसी समझौते अथवा राजीनामों द्वारा होता है।
2. इसमें पक्षकारों के बीच कटुता को दूर कर उनमें मधुर सम्बन्ध स्थापित किये जाने का भी प्रयास किया जाता है।
3. इसमें खर्च भी बहुत कम आता है।
4. मामलों का निपटारा जल्दी हो जाता है।
5. राजीनामों में न्यायिक अधिकारी, शिक्षक, समाजसेवी आदि मिलकर अपनी भूमिका निभाते है।

लोक अदालत के माध्यम से संविधान में निहित उद्देष्यो को गरीब एवं असहाय लोगों को उपलब्ध करवा कर प्रजातंत्र एवं विधि शासन को प्रभावी रूप से लागू किया जाता हैं। भारतीय संविधान एक ऐसे समाज की परिकल्पना करता हैं, जिसमें सामाजिक-आर्थिक एवं विधिक न्याय सभी व्यक्तियों को समानता के आधार पर उपलब्ध हो। विधि के समक्ष समानता के इस संवैधानिक आदेश को लागू करने के लिए राज्य को यह सुनिष्चित करना हैं कि किसी भी नागरिक को आर्थिक या अन्य अयोग्यताओं के कारण न्याय उपलब्ध करवाने के अवसरो को प्रदान करने से इन्कार नही किया जायें। वैसे न्याय प्रदान करने वाली संस्थाऐ हमेषा इस बात पर तत्पर रहती हैं कि

प्रार्थी को न्याय शीघ्र अतिशीघ्र मिल जायें, किन्तु अपने अधिकारों की अज्ञानता के कारण तथा अन्य कारणो से वे न्याय प्राप्ति के लिये यथा योग्य कदम बढ़ाने में असमर्थ होते हैं। क्योंकि गरीब, पिछड़े एवं समाज के कमजोर वर्गो में इस प्रकार की शंका और भय उत्पन्न हो गया हैं कि वे न्याय प्राप्त नही कर सकते हैं। इसलिए समस्त विधिक सेवा कार्यक्रमों एवं योजनाओं को उपर्युक्त प्रभाव को दूर करने हेतु कार्य करना चाहिए तथा समाज के विभिन्न प्रकार से कमजोर वर्गो के मस्तिष्क में यह विश्वास पैदा करना चाहिए कि हमारा न्याय प्रशासन समाज के अंतिम पंक्ति तक के व्यक्तियों को समान न्याय उपलब्ध करवाने के लिये कटिबद्ध हैं।

पटना उच्च न्यायालय ने सुरेन्द्र सिंह एवं अन्य विरूद्ध देवमुनि सिंह एवं अन्य के वाद में यह निर्धारित किया कि स्थायी लोक अदालत नियमित न्यायालय नही होता हैं। वे निर्णय कृत्य नही करते हैं तथा वे केवल कानूनी सुलहकर्ता होते हैं। वे न्यायिक नियत कृत्य नही कर सकते तथा कपट के विवाध्यक के विचारण की अन्तर्निहित अधिकारिता उन्हें प्राप्त नही होती हैं।

लोक अदालत को धारा 2 (सी-1) (घ) विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987 में पारिभाषित किया गया हैं जिसके अनुसार लोक अदालत का अर्थ एक ऐसी अदालत से है जो कि विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम की धारा 19 से 22 में सम्मिलित हैं।

लोक अदालत द्वारा दिया गया अधिनिर्णय अंतिम होगा तथा विवाद के समस्त पक्षकारों पर बन्धनकारी होगा।

पंजाब नेशनल बैंक विरूद्ध लक्ष्मीचंद्र के वाद में न्यायालय ने विनिष्चित किया कि लोक अदालत का पंचाट अंतिम होता हैं तथा इसके विरूद्ध किसी न्यायालय में अपील नही की जा सकती परन्तु ज्योति शर्मा विरूद्ध राजेन्द्र कुमार 2010 के मामले में न्यायालय में निर्धारित किया है कि लोक अदालत द्वारा पारित अधिनिर्णय उच्च न्यायालय की रिट अधिकारिता के अधीन हैं तथा इस अधिकारिता के प्रयोग में इसके विरूद्ध सुनवाई की जा सकती हैं। लेकिन रिट अधिकारिता का प्रयोग न्यायालय को आपवादिक मामलों में ही करना चाहिए।

पंजाब राज्य विरूद्ध फूलनरानी एवं अन्य के वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि लोक अदालत अपने अधिनिर्णय, समझौते या परिनिर्धारण के आधार पर देगी। यदि पक्षकारों के मध्य कोई समझौता न हो सके तो लोक अदालत कोई अभिनिर्धारण या आदेश पारित नही करेगी।

सकारात्मक रूप से कहा जाय तो विधिक शिक्षा के विकास में भारतीय विधिक परिषद् का योगदान सराहनीय हैं। अधिवक्ता अधिनियम की धारा 7 के अनुसार इसके कार्यो में विधिक शिक्षा का उन्नयन करना और ऐसी शिक्षा प्रदान करने वाले भारत के विश्वविद्यालयों और राज्य विधिक परिषदों से विचार विमर्श करके ऐसी शिक्षा के मानक निर्धारित करना सम्मिलित है। बार काउन्सिल ऑफ इण्डिया ने वास्तव में विधिक शिक्षा के विकास में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वर्तमान समय में स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् तीन वर्षीय विधि पाठ्यक्रम एवं इन्टरमिडिएट के बाद पांच वर्षीय विधि पाठ्यक्रम दोनों ही अस्तित्व में है। परन्तु पंचवर्षीय पाठ्यक्रम बेहतर माना जाता है। बेहतर होगा यदि सम्पूर्ण भारत वर्ष में पंचवर्षीय पाठ्यक्रम को अनिवार्य कर दिया जाय। भारत के प्राय: सभी विश्वविद्यालयों में एक समान पाठ्यक्रम नही है, सभी विश्वविद्यालयों में एक समान पाठ्यक्रम लागू किया जाना चाहिए, जिससे विद्यार्थी को अपना पाठ्यक्रम पूरा करने का समान अवसर बगैर किसी परेशानी के प्राप्त हो सकें।

उक्त के ठीक विपरीत नकारात्मक रूप से यह कहा जा सकता हैं कि भारतीय विधिक परिषद् विधिक शिक्षा में आवश्यकतानुसार नये परिवर्तनों को लागू करने में विफल रहा है। भारतीय विधिक परिषद् का यह दृष्टिकोण है कि कानूनी शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य वकीलों को उत्पन्न करना हैं। जिस प्रकार प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक शिक्षा का आदर्श राष्ट्र को अच्छे नागरिक प्रदान करना होना चाहिये उसी प्रकार उच्चतर माध्यमिक के पश्चात् कि विधिक शिक्षा का आदर्श/लक्ष्य राष्ट्र के लिए लाभप्रद विधिक ज्ञान रखने वाले ऐसे विधिज्ञो को उत्पन्न करना होना चाहिये जो भारत को विश्व शिखर पर स्थापित करने के अपनी भूमिका का निर्वहन कर सकें। क्योंकि आज विधिक शिक्षा को न केवल बार की आवश्यकताओं और व्यापार, वाणिज्य और उद्योग की नई जरूरतों को पूरा करना है किन्तु वैश्वीकरण की आवश्यकताओं को भी पूरा करना है। अन्तर्राष्ट्रीय आयाम वाले नये विषय विधिक शिक्षा में आ गये हैं। बदलते परिदृष्य में अब व्यापार एवं वाणिज्य में गैर स्नातक विधि स्नातकों की भी एक बहुत बड़ी आवश्यकता है। अन्तर्राष्ट्रीय विधिक शिक्षा का उद्देश्य अब मात्र ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना मात्र ही नही होना चाहिए जो विभिन्न न्यायालयों में विधि का अभ्यास कर सकते है। यद्यपि ऐसे कार्यक्रम के इस तरह की क्षमता को अपने आप में एक उद्देश्य के रूप में नही देखा जाना चाहिए बल्कि केवल एक अच्छे परिणाम के रूप में देखा जाना चाहिए। हमारी विधिक शिक्षा से विद्यार्थियों को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, प्रथाओं, तुलनात्मक कानून, कानूनों के संघर्ष, अन्तर्राष्ट्रीय मानव अधिकार कानून, पर्यावरण कानून, लिंग न्याय, अंतरिक्ष कानून, जैव चिकित्सा कानून, जैव नीति, अन्तर्राष्ट्रीय समर्थन आदि विषयो में विशेषज्ञता प्राप्त होना चाहिए।

विधि-पत्रिकाओं का भी विधि शिक्षा के विकास में विशेष महत्व होता हैं। विधि-जर्नल और रिपोर्ट की संख्या पर्याप्त नही हैं इसमें वृद्धि करने की व्यावस्था करनी चाहिए। विधि जर्नल एवं रिपोर्ट में सरल विधिक भाषा का उपयोग होना चाहिए ताकि विद्यार्थीगण भी इसका आसानी से लाभ उठा सकें।

विधिक शिक्षा की सफलता मुख्य रूप से शिक्षक गण, पुस्तकालय, विधि रिपोर्ट विधि विद्यार्थियों के लिए विहित पाठ्यक्रम, शोध सुविधाओं इत्यादि पर आधारित होनी चाहिए। अच्छे शिक्षकों को आकर्षित करने के लिए उन्हें अच्छा वेतन तथा अन्य सुविधाएँ प्रदान करना आवश्यक है। अच्छी पुस्तकें क्रय करने के लिए पुस्तकालयों को पर्याप्त धन प्रदान करना आवश्यक है। विद्यार्थियों की संख्या के अनुसार शिक्षकों की संख्या भी अच्छे पठन-पाठन के लिए आवश्यक है। विधि शिक्षा इस प्रकार की होनी चाहिए कि विद्यार्थियों को सैद्धांतिक ज्ञान के साथ ही व्यावहारिक ज्ञान भी प्राप्त हो।

विधि शिक्षा के विकास में पुस्तकों का बड़ा महत्व है। अनेक शिक्षकों एवं अधिवक्ताओं द्वारा विधि पुस्तकें लिखी जाती है परन्तु वे पर्याप्त नही है। पुस्तक लेखन कार्य को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। अच्छी पुस्तकें लिखने वाले शिक्षकों को सम्मानित करने की योजना भी बनाना चाहिए। ऐसे बहुत से शिक्षक है जो अच्छी पुस्तकें लिखना चाहते है परन्तु उन्हें प्रकाशक नही मिलते है। सरकार और बार काउंसिल ऑफ इंडिया को आगे आना चाहिए और अच्छी पुस्तकों को प्रकाशित करने की व्यवस्था करना चाहिए।

वर्तमान में विधि के क्षेत्र में शोध कार्य भी पर्याप्त नही है, अत: शोधकार्य हेतु प्रोत्साहन भी दिया जाना चाहिए। एम.पी. दीक्षित का यह सुझाव बेहतर

प्रतीत होता हैं कि विधि–विद्यालयो को न्यायालय से उसी प्रकार सम्बद्ध करना चाहिए जैसे कि मेडिकल कॉलेजो को अस्पतालों से सम्बद्ध किया जाता हैं। विद्यार्थियों को व्यवहारिक प्रशिक्षण देने में भी यह उपयोगी होगा।

उचित होगा यदि प्रत्येक राज्य में एक विधि शिक्षा समिति की स्थापना की जाये और राष्ट्रीय स्तर पर एक अखिल भारतीय विधिक शिक्षा समिति की स्थापना की जाए। राज्य समिति को अखिल भारतीय समिति की देखरेख एवं नियंत्रण में कार्य करें चाहिए। राज्य समिति राज्य में विधि शिक्षा देने वाले संस्थानो का निरीक्षण करना चाहिए। इसे स्वच्छ परीक्षा के निमित्त उचित कार्यवाही करने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिए। इसके सदस्यगण परीक्षा के दौरान उड़ाका दल के रूप में कार्य करें। परीक्षा में नकल होने पर इसे परीक्षा निरस्त करने की शक्ति प्राप्त होना चाहिए, साथ ही उसे किसी विधि–विद्यालय अथवा विश्वविद्यालय के विधि विभाग में छात्रो की संख्या के निर्धारण की भी शक्ति प्राप्त होना चाहिए।

विधिक शिक्षा के उत्थान के निमित्त विधिज्ञ परिषद्, विधि शिक्षक, न्यायाधीशगण एवं सरकार सभी का सहयोग आवश्यक है। विधि शिक्षा से संबंधित मामलो में इन सभी की सहमति से निर्णय लेना बेहतर होगा। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि विधि–शिक्षको के पूर्ण सहयोग के बिना विधि शिक्षा सम्बन्धी योजनाओं का कार्यान्वयन उचित रूप से करना दुष्कर होगा। विधि शिक्षको के अनुभव को दृष्टीकृत रखते हुए विधि स्नातक पाठ्यक्रम बनाने एवं परीक्षा सम्बन्धी नियम बनाने का कार्य विधि शिक्षको को ही दिया जाना चाहिये।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. भारत का संविधान – डॉ. जयनारायण पाण्डेय
2. जनहित वकालत, विधिक सहायता एवं विधिक सेवायें – डॉ. कैलाश राय
3. लीगल एण्ड पब्लिक इन्ट्रेस्ट लायरिंग एण्ड पैरा लीगल सर्विसेज – डॉ. बसन्तीलाल पाण्डेय.
4. भारत का संविधान – डॉ. बसन्तीलाल बावेल
5. लोकहितवाद, विधिक सहायता एवं विधिक सेवायें, लोक अदालत तथा पैरा–लीगल सेवायें–प्रो. (डॉ.) हरिमोहन मितल

फुटनोट:–

1. AIR 1980 SC 1579
2. AIR 1978 SC 1548
3. AIR 1984 SC 1802
4. AIR 1992 SC 189

****